टीला

आनंद हर्षुल

टीला

वह टीले पर बैठा था - चुप और गुमसुम। पैर पेट की ओर मुड़े हुए थे और घुटनों पर कोहनियाँ थीं। अपनी हथेलियों में वह अपना चेहरा थामे था। हथेलियों के बीच काला चेहरा था - ठेठ काला और चेचक के गहरे दागों से भरा। सबसे अधिक दिखती नाक थी - पीछे दबी और सामने को पसरी। सबसे कम दिखती देह थी - दुबली पतली। सिर पर लाल पंछा था जो उसके कंधे तक लंबे, तेल चुपड़े बालों को समेटे हुआ था। कमर में

लँगोटी थी - मटमैली सफेद। पीठ नंगी थी और सीना नंगा था और अभी पैरों के पीछे छिपा पेट भी नंगा था।

(जब कभी वह गाँव से बाहर निकलता तो पंछा सिर से उतरकर उसकी कमर में आ जाता और बाल कंधे को छूने लगते। बंडी से ढक जाती पीठ तो सीना और पेट भी। उसकी इच्छा होती तो वह बालों को एक तिरछे जूड़े में बदल देता और पूरी ठसक के साथ गाँव से बाहर निकलता। अगर निकलता तो कि निकलना बहुत कम था।)

टीले के आसपास, दूर-दूर तक सुनसान था तो वह सुनसान पर बैठा था। आज उसका अड़तीसवाँ जन्मदिन था। और उसे पता नहीं था कि आज का दिन उसके जन्म का है। उसे जन्मदिन कभी मालूम नहीं रहा। जन्मदिन, पढ़ने-लिखने जाओ तो गुरूजी रच देते थे। जो पढ़ने नहीं जाते थे, उनका कोई जन्म दिन नहीं था। उसके जन्म का दिन गुम गया। वह पढ़ने गया नहीं तो जिस दिन उसका जन्म हुआ, उसके आसपास का दिन भी उसके पास नहीं रहा। जन्म का दिन तो जो पढ़ने जाते थे, उनका भी गुम जाता था। गुरूजी का रचा दिन, उनके जन्म के दिन से कभी-कभी बहुत दूर का दिन होता था और जीवन भर साथ बँधा रहता था। यह भी सच है कि बँधे-बँधे वह दिन, असली जन्मदिन बन जाता था। जन्मदिन उसके लिए जैसे दीमक की ढूह की, मिट्टी का ढेला था कि छुओ तो बिखर जाए और हथेली में सिर्फ धूल रह जाए और धूल यह न कह सके कि वह दीमक के ढूह की है। (वह दिखने में अड़तीस से अधिक था। पिछले कुछ बरस उसके एक-एक जन्मदिन में कई-कई जन्मदिन इकट्ठा करते गए थे।)

वह सुबह से भटकता रहता था - नशे की लहरें इकट्ठी करता। और जब वे उसके भीतर इतनी जमा हो जातीं जितनी उसकी जरूरत थी... जितनी उसके मन की जरूरत थी तो वह नशे की, उठती-गिरती लहरों के साथ टीले पर आकर बैठ जाता था और अपने भीतर उठने-गिरने लगता था। पर आज वह नशे की लहरों में नहीं था। वह सुबह से बैठा था - इसी तरह। वह हिलता ढुलता भी नहीं दिख रहा था। दूर से कोई उसे देखे तो काले पत्थर की मूरत को देखे।

टीले के आसपास, कँटीली झाड़ियाँ थीं और थोड़ी दूर पर एक विशाल बरगद का पेड़ था। बरगद का पेड़ इतना पुराना था कि जमीन तक पहुँच कर जड़ हो गई जटाओं के भीतर था। धरती पर वह आदमी जीवित नहीं था, जिसने उस बरगद को पौधा देखा था। टीले पर बैठे आदमी ने बरगद को जटाओं में ही देखा था। उसका बचपन बरगद की जटाओं में झूल चुका था और जटाएँ झूल चुकी थीं उसके बचपन में, पर उसे बरगद का बढ़ना नहीं दिखा था। (पौधों का बढ़ना दिखता है... बूढ़े पेड़ों का बढ़ना कितना

लुप्त होता है! बूढ़े पेड़ भीतर ही भीतर बढ़ते हैं... पकते हैं... और अंत में नष्ट हो जाते हैं... तो सीधे उनका नष्ट होना दिखता है। नहीं दिखता है बढ़ना।)

बरगद के आसपास ही, थोड़ी दूर पर, पीपल, नीम, साल, सेमल के पेड़ हैं। साल और सेमल बहुत हैं। सेमल की रूई वहाँ उड़ती रहती है - नाचती-सी और उसके फूलों का रंग लाल, जागता रहता है। देखो, बूढ़े पेड़ों में नहीं उग रहे हैं बूढ़े फूल! देखो, बूढ़े पेड़ों के फूल उनकी मुस्कान हैं, जैसे किसी बूढ़े चेहरे में बच्चे की मुस्कान! (सभी पेड़ बूढ़े हो रहे हैं!) बबूल के पेड़ भी हैं और बहुत अधिक हैं, दूर दूर तक छिटके... नदी को घेरे से-नदी के किनारे तक खड़े। नदी की सतह पर बबूल के साथ साथ पीपल, नीम लाल, सेमल के डोलते पेड़ हैं।

बबूल के पेड़ आदमी को दातौन दे देते हैं। अलस्सुबह, वह टीले पर बैठकर बहुत देर तक अपने दाँतों को घिसता रहता है। इतना ही लंबा दातौन घिसते-घिसते अंगुल-दो अंगुल बचता है। काले चेहरे पर मोती चमकते हैं। फिर वह नदी में उतरता है - पंछा लपेटकर। उसकी उतरी लँगोटी टीले पर उसका इंतजार करती रहती है। फिर वह नदी से बाहर आता है। गीली देह पर ही लँगोटी बाँधता है। और पंछे को निचोड़ता, हवा में फटकारता, चल पड़ता है आबादी की ओर। नशे की लहरें इकट्ठी करने। टीले पर वह इस तरह बैठता है, जैसे टीले पर पैदा हुआ हो। देखो, बारिश है और वह टीले पर बैठा है... देखो अंधड़ है और वह टीले पर बैठा है... देखो आसमान से आग बरस रही है और वह टीले पर बैठा है।

टीला अपने उपर उगे झाड़-झंखाड़ को महसूस करता था और अपने पर बैठे रहने वाले इस आदमी को भी। टीले के भीतर यह इच्छा उमड़ती-घुमड़ती रहती थी कि वह इतना उठे कि पहाड़ बन जाए। उठे इतना ऊँचा कि आदमी के लिए कठिन हो जाए। टीले को यह पता नहीं था कि आदमी की झोपड़ी पहाड़ी पर थी। पहाड़ी से वह हर सुबह उतरता - एक पगडंडी पकड़कर, और उसी पगडंडी को पकड़कर वापस पहाड़ी चढ़ता था। पहाड़ी से कई पगडंडियाँ उतरती थीं और नदी में डूब जाती थीं। नदी, पहाड़ी को घेरे बह रही थी। पगडंडियाँ पैरों का निशान थीं - हजारों-हजार पैरों का। पहला आदमी जो बरसों-बरस पहले पहाड़ी चढ़ा और उतरा होगा - अब जीवित नहीं था, पर पगडंडियों में उसके पैरों के निशान जीवित थे। पगडंडी पर चलते हो तो हजारों-हजार पैरों की, हजारों-हजार बरस पुरानी ध्वनियों के साथ चलते हो।

टीले से नदी दिखने की दूरी पर थी। नदी चट्टानों पर बहती थी और बहुत आवाज करती थी। टीला, हमेशा नदी को बहते देखता रहता था - एकटक। टीले तक, नदी के

बोलने की आवाज बहुत साफ-साफ आती थी। टीला नदी को सुनाता कि नदी उसे पुकारती रहती।

टीले पर बैठे-बैठे, आदमी भी नदी को सुनता। नदी की आवाज सुनते-सुनते वह अपनी आँखें बंद करता तो टीला धीरे-धीरे अपनी जगह से खिसकने लगता। थोड़ी देर बाद छप् की आवाज आती और वह समझ जाता कि टीला नदी में उतर गया है। टीला नदी में बहता जाता... बहता जाता... जैसे कोई विशाल हाथी। वह टीले पर बैठे-बैठे ही नदी को, अपने पैरों और हथेलियों में महसूस करता - गीली और ठंडी नदी। कभी-कभी उसके चेहरे पर भी नदी के छींटे आते।

नदी चट्टानों को कहते बह रही थी और चट्टानें नदी को कहतीं, ठहरी हुई थीं, पर आदमी आज दोनों को नहीं सुन पा रहा था। उससे आज टीले पर बैठकर रोज की तरह कुछ भी नहीं किया गया। टीला आश्चर्यचकित कि उस पर कोई दूसरा आदमी तो नहीं बैठा है?

टीले पर बैठा आदमी, अकेला रह गया था... इतना अकेला जैसे आसमान में भटकता कोई पक्षी... इतना अकेला जैसे हवाओं में तैरता कोई पत्ता... इतना अकेला जैसे बादलों के बीच चमकी और गुम हुई बिजली...

पाँच भाइयों और एक बहिन में, वह सबसे छोटा भाई है। बहिन ससुराल चली गई है। बहिन कभी-कभी पुकारती है तो पहाड़ी में, उसकी झोपड़ी तक आती है बहिन की आवाज। तब उसकी पुकार से उसे लगता है कि अकेला नहीं है। पर झोपड़ी में देर तक नहीं ठहरती थी बहिन की आवाज। आवाज, पहाड़ी उतरती कि दूसरी पहाड़ी चढ़ सके -अपनी ससुराल। और वह फिर अकेला हो जाता। भाई, पहाड़ी उतरे तो किसी दूसरी पहाड़ी पर नहीं चढ़े - आबादियों की ओर चले गए। इतनी भीड़भाड़ कि गुम गए। कमीज-पतलून पहनते हैं। कमीज के भीतर नहीं है बंडी तो पतलून के भीतर नहीं है लँगोटी। उनकी आवाजें बदल गई हैं, इतनी कि इस छोटी पहाड़ी को चढ़ना, उनकी आवाजों के लिए मुश्किल है... घर तक पहुँचना मुश्किल है कितना!

उसकी पहाड़ी पर आठ घर हैं। आठ झोपड़े। कई बरस से हैं। अब झोपड़े बढ़ते नहीं है। झोपड़े बनने से पहले ही पहाड़ी उतर जाते हैं। वह इन आठ में से किसी भी झोपड़े के भीतर जा सकता है - बेधड़क। पर सगे भाई-बहन तो सगे भाई-बहन होते हैं। याद आते हैं और जब जब याद आते हैं, वह अकेला हो जाता है। औरत हो साथ, तो भी अकेला। माँ थी और बाबू थे तो कम आती थी भाई-बहनों की याद। माँ पहले गई। फिर पीछे पीछे बाबू गए, जैसे माँ के लुगड़े का छोर उनके हाथ में फँसा रह गया हो - माँ के मरने

के बाद भी। माँ भोली थी। बाबू उससे भी अधिक भोले। (सभी भोले हैं... पूरी पहाड़ी ही भोली-भाली है।)

बाबू अपनी दुनिया में मगन आदमी थे। उनकी दुनिया में पीतल आकार पाता था। उनकी अँगलियों में जादू था... और जादू के भीतर जादू था, और फिर उस जादू के भीतर भी जादू था। वे धातु से जो गढ़ते - वह सबको खींचता। यह ऐसा जादू था, जो पहाड़ पर बसे, इन आठ घरों के गाँव को पार कर, नीचे आबादियों में पसरता गया था। जादू का मौल कौड़ी का ही था। पर बाबू को खुशी थी कि उनके आकारों के लिए लोग पहाड़ी चढ़ते हैं : पढ़े लिखे सभ्य लोग। (एक आदमी बार-बार आता था, जिसके सिर पर कंधे को छूते लंबे बाल थे और लंबी उलझी दाढ़ी थी - सफेदी की ओर गिरती। कुरता और लुंगी पहना आदमी : लुंगी हमेशा सफेद रहती और कुरता कभी-कभी रंगीन-छींटदार हो जाता था। वह दिखने में संत था - स्वामी। बहुत बाद में पता चला कि वह खुद कलाकार है कि उसकी कला में पहाड़, चिड़ियों के साथ उड़ते हैं।)

बाबू की अँगुलियों का जादू, धीरे धीरे उसकी अँगुलियों में उतरा। बरसों लगे। वह अपने बचपन से बाबू को काम करते देखते रहा है। अभी टीले पर जैसा बैठा है, ठीक वैसा ही बैठा, घुटनों पर कोहनी और हथेलियों में अपना चेहरा लिए-छोटा सा लड़का, घंटों अपने बाबू को काम करते देखता रहता। बाबू की पीठ पीछे झोपड़ी रहती और लड़के की पीठ पीछे ढलान उतरता सलफी का पेड़, बाड़ से टिका खड़ा रहता। सलफी के पेड़ और झोपड़ी के बीच वह जगह थी, जहाँ जादू रचा जाता। बाबू पहले मिट्टी से आकृति गढ़ते-पेड़, चिड़िया, ईश्वर, मछली, मनुष्य...। बाबू के साथ साथ वह भी कोशिश करता। बाकी चारों भाई इधर-उधर होते रहते और उनकी हँसी झरती रहती-बाबू की पीठ पर और उसके चेहरे पर और मिट्टी को साधती उसकी हथेलियों पर। मिट्टी उसकी नन्ही अँगुलियों में सधती नहीं तो वह जो सोचता, वह आकार न सधता। वह झुँझलाता, पर फिर कोशिश करता। बाबू की अँगुलियों की ओर देखता, ध्यान से कि वे कितनी तेजी से नाचती हैं - मिट्टी के लोंदे पर! मिट्टी नहीं रह जाती मिट्टी। वह झुँझलाता कि मुझसे क्यों नहीं होता? बाबू से पूछता। बाबू कहते - सब धीरे धीरे होता है, जैसे कुम्हड़े का फूल खिलता है धीरे-धीरे और धीरे धीरे बनता है फल इतना बड़ा कि कइयों का पेट भरता है। बाबू ने यह कहा तो झोपड़ी की छत पर, उसे कुम्हड़े की नार दिखी - जैसे बाबू को सुन खुश होकर काँप रही हो... खुशी से काँपता कुम्हड़े का फूल दिखा... कुम्हड़े का बड़ा-सा फल दिखा खुश-खुश चमकता।

वह पूरे उत्साह से देखता रहता बाबू को जीवन गढ़ते। उसकी अँगुलियाँ बाबू की अँगुलियों को देखती रहतीं। जब मिट्टी की आकृति सूख जाती तो बाबू की अँगुलियों

में मोम, मोटे-पतले धागों सा बटकर आता और मिट्टी की आकृति को लपेटता जाता। आकृति सजती जाती। आकृति, मोम से सारे गहने-गुरिया पहन लेती। बाबू सजी सँवरी आकृति में फिर मिट्टी लपेटते। सब कुछ ढक जाता मिट्टी के नीचे। मिट्टी लिपटी आकृति, धूप में सूख रही होती तो भीतर क्या है - इसका हल्का-सा अंदाज लगता कि मनुष्य है कि चिड़िया है कि पेड़ है कि ईश्वर है... कि बाबू ने जो गढ़ा है उससे अलग, मिट्टी के भीतर, कुछ गढ़, बन और पक रहा है।

झोपड़ी के दाईं ओर भट्टी थी। जिसमें बाबू पीतल के टुकड़े पिघलाते थे। बहुत समय लगता, पर पीतल पानी हो जाता। धातु को पानी होता देखना कितना अच्छा लगता! पीतल-पानी को बाबू उस छेद में डाल देते जो गढ़ी आकृति में, मोम तक पीतल-पानी पहुँचाने के लिए, वे पहले से छोड़कर रखे होते। पीतल-पानी छेद से भीतर जाता और मोम की जगह बैठ जाता... मोम, पीतल-पानी को जगह देने, हवा बन, उसी छेद से बाहर आता... आसपास - मोम की गंध ही गंध होती... धातु की गंध रहती - जलती गंध। जब आकार ठंडा हो जाता तो मिट्टी तोड़ते। मिट्टी तोड़ते तो जादू बाहर आता। आकृति, कहीं-कहीं चमकती-सी और कहीं-कहीं काले धब्बों में होती। बाबू आकृति को धोते माँजते तो वह साफ चमकने लगती। पर अनगढ़ता के धब्बे बने रहते... अच्छे लगते। बाबू की आकृतियाँ इसीलिए सबसे अलग थीं कि वे बहुत सावधानी से गढ़े जाने के बाद भी अनगढ़ थीं - इतनी सहज जैसे किसी बच्चे का मन थीं।

गढ़ने का सब काम झोपड़ी से बाहर था तो बाबू बस खाने और सोने झोपड़ी के भीतर जाते थे। सोना और खाना भी कभी-कभी भूल जाते थे, पर पीना कभी नहीं भूलते थे। दिन भर सलफी पीते। और उसे दिन में एक बार सलफी के पेड़ पर जरूर चढ़ना पड़ता। सलफी के पेड़ पर एकदम ऊँचे पर टँगी मटकी में, सफेद द्रव भरा रहता - झागदार। जैसे जैसे धूप बढ़ती, द्रव खट्टा हो जाता और द्रव के भीतर नशा गहराता जाता। तो बाबू सुबह से शुरू करते और दोपहर तक पूरी मटकी पी जाते। माँ लाँदा बनाती तो लाँदा भी पी जाते। (मड़िया और चावल पकता और चार-पाँच दिन रखा रहता तो लाँदा बनता।) लाँदा बनता तो सब खाने की जगह लाँदा ही पीते। हलका-हलका नशा दिमाग में कुछ देर तक बना रहता - अच्छा लगता।

बाबू के पास बहुत नशा होता। सलफी भी होती तो लाँदा भी होता तो ताड़ी भी होती तो महुआ भी होता। महुआ अक्सर रात में होता। होता तो माँ और बाबू में झगड़ा भी होता। वे माँ को पीटते तो माँ भी उन पर हाथ चलाती। लगता दोनों एक दूसरे को मार डालेंगे। पर एक दूसरे को पीटते-पीटते जब वे थक जाते तो उनके बीच धीरे-धीरे प्यार उठता। प्यार उठता और उठता जाता...

माँ का यह दुख नहीं था कि झोपड़ी की ओर बाबू की पीठ है। सारे आदमियों की पीठ झोपड़ी की ओर ही थी। घर औरतों में था। आदमी नशे की लहरों में ज्यादा थे, काम में कम। औरतें मेहनती थीं, जैसे माँ सुबह उठती... जंगल जाती... लकड़ी बीनती... कंद मूल खोदती... भाजी तोड़ती... महुआ बीनती... भात पकाती... साग पकाती... बाजार जाती... नमक लाती... पहाड़ी की किसी सीधी पगडंडी से उतरती जो उसे बहुत तेज नीचे उतारती कि वह सब कुछ जल्दी निपटा सके, साँझ घिरने से पहले सौदा-सुलफ लेकर घर पहुँच सके। (साँझ घिरते ही, डर घिरता था।) बाजार जाती माँ के सिर पर टोकनी होती, जिसमें चार, महुआ, इमली आदि होते जो बाजार पहुँचकर बदल जाते किसी उस वस्तु में जो जंगल देता नहीं था। अक्सर नमक में ही बदलते। नमक ही स्वाद था। वह नमक के लिए ही बाजार जाती थी। पैसा बचता तो ही कुछ सौदा करती, नहीं तो नमक लेकर ही वापस आ जाती थी। वह नमक सहेजती थी। नमक खत्म हो जाता तो बेचैन हो जाती थी। नमक माँगने जाती किसी झोपड़े में तो मुट्ठी आधी मुट्ठी नमक मिल जाता कि काम चल सके, कि माँ जब-जब बाजार कर लौटती तो वह मुट्ठी आधी मुट्ठी नमक याद से वापस कर देती। कोई नमक माँगने आता तो तुरंत दे देते हैं। पर हाथ में कोई किसी को नमक नहीं देता है। नमक का दोना जमीन पर रख देते हैं। कहते हैं कि हाथ में नमक दो तो झगड़ा होता है। झगड़ा सब करते हैं, पर झगड़े से सब बचना भी चाहते हैं।

माँ उसे इतनी मेहनती लगती कि आकार गढ़ते बाबू शर्म लगते। उसे लगता था कि बाबू का काम माँ के काम से कम मेहनत का हैं कि बैठे-बैठे गढ़ो। माँ दौड़ते भागते गढ़ती थी। पहाड़ चढ़ती उतरती थी। नदी पार करती। सड़क लाँघती। दिनभर लगी रहती तो साँझ और सुबह के लिए भात-भाजी इकट्ठा कर पाती थी। माँ कभी बीमार पड़ जाती तो सब कुछ बिखर जाता। कुछ भी समय पर न घटता... न झोपड़े के भीतर... न झोपड़े के बाहर... न पहाड़ी के जंगल में... न पहाड़ी के नीचे नदी में... न नदी के पानी में मछलियों के बीच... कुछ भी समय पर न घटता। दूर कहीं लगे बाजार में एक औरत महुआ, इमली, कंद मूल आदि के बदले नमक खरीदने खड़ी नहीं होती और बाजार से उस औरत का समय छूट जाता।

तो जब माँ नहीं रही तो झोपड़े में माँ के किए-धरे का समय बहुत दिनों तक नहीं घटा। समय रुका रहा। फिर वह घटने लगा। घटा। पर वह माँ के किए धरे का समय नहीं रहा। वह बाबू के किए धरे का समय बना। अनगढ़। ठीक उनके आकारों की तरह, जिसे बार-बार सहेजो तो बार-बार बिखर जाता था। फिर बहन बड़ी हुई तो माँ का समय फिर घटने लगा। बहन के रहते-रहते ही भाइयों की शादियाँ हुई, पर उनकी औरतें घर में

ठहरी नहीं। इस तरह झोपड़ी में उनका समय नहीं घटा। तो झोपड़े में बहन का समय ही बना रहा। बहन गई ब्याह कर, तो बाबू और वह, फिर अकेले हो गए। तब झोपड़े में उसका समय घटने लगा। ठीक-ठीक बस उसका समय नहीं। वह बाप-बेटे का मिला-जुला, अनगढ़ समय था, जो लगभग साल भर घटा। फिर घोटुल में वह दिखी, जिसके उपरी ओंठ के बाईं ओर एक छोटा सा मस्सा था। चेहरा गोल था और माथे पर उसकी माँ की तरह गोदना! उसके हाथों और पैरों में भी था गोदना। उसकी पीठ पर भी गोदना था और...

वह घर आई तो एक बार फिर माँ का समय घर आया। पर बाबू उसके आने के बाद कुछ माह तक रहे, जैसे इंतजार कर रहे हों कि वह झोपड़ी में माँ के समय को देखें एक बार फिर, और चले जाएँ ऊपर। (वह आसमान की ओर आज भी देखता है तो बाबू को खोजने लगता है।) बाबू नहीं रहे तो बाबू की जगह वह बैठने लगा झोपड़ी की ओर पीठ कर और आकार गढ़ने लगा। उसे लगा कि अब आकार गढ़ते उसके हाथ पूरी तरह सीधे हुए हैं : पके हुए। ऐसा बाबू की जगह बैठने पर हुआ, जैसे वह जगह जादू हो। इससे पहले भी, वह बरसों बाबू के सामने बैठकर गढ़ता रहा था, तब झोपड़ी की ओर उसका चेहरा होता था और उसे लगता था कि उसके हाथों में पूरा सधना नहीं है।

वह बाबू की जगह बैठा तो बाबू की तरह हो गया। दूर से देखो तो बाबू बैठे दिखते कि वे मरे नहीं हों। (देखो, बहुत बूढ़े बाबू अपनी उम्र घटाकर फिर बैठ गए धीरे धीरे बूढ़ा होने!) अंतर इतना था कि सलफी के लिए पेड़ चढ़ने, उसके पास कोई बेटा नहीं था। पहला हुआ तो कुछ दिन बाद मर गया। दूसरा हुआ तो कुछ और ज्यादा दिन रहा और मर गया। तीसरी लड़की थी, बहुत दिन जीवित रही। बहुत सुंदर थी। वह आकार गढ़ता होता तो पीछे आती चुपचाप, और उसकी पीठ पर लद जाती। थोड़ी देर, बेटी को वह अपनी पीठ पर झुलाता रहता झूला और उसके सीने पर बेटी के नन्हे हाथ डोलते और बजते रहते। बेटी हँसती रहती, जब तक झूलती रहती उसकी पीठ। पीठ ठहरती तो बेटी उतरकर दौड़ पड़ती, खेलने-कूदने। बेटी, उसके कंधों तक आते जीवित रही। एक दिन लड़कियों के साथ जंगल गई लकड़ी बीनने। भालू ने पकड़ लिया। लड़कियाँ दौड़ती-चीखतीं वापस आईं। बेटी आई तो लहूलुहान आई। बची नहीं। पर वह आकार गढ़ने जब भी बैठता है (अब वह रोज बैठता नहीं... मन फट चुका है।) उसकी पीठ को लगता है कि बेटी आएगी और लद जाएगी। कभी-कभी उसकी पीठ अपने आप झूलने लगती है... झूलती जाती है... झूलती रहती है... जैसे कोई पागल पीठ।

तो आदमी टीले पर बैठा था - चुप और गुमसुम। उपर पहाड़ी पर साँझ थी और उसकी झोपड़ी में लोग इकट्ठा हो चुके थे। झोपड़ी में, ठीक चूल्हे के पास, उस आदमी की

औरत मरी पड़ी थी। पास ही टाँगी पड़ी थी - खून से सनी और खून के दाग पर रखी। खून का धब्बा, मिट्टी के फर्श पर बड़े घेरे में बना हुआ था - औरत की गर्दन को छूता। औरत खून के धब्बे में डूब रही थी। औरत का चेहरा अवाक् था जैसे वह अचानक चली टाँगी के वार को अब भी देख रही हो। झोपड़ी के फर्श पर, भात बिखरा हुआ था और एक जर्मन का तसला दीवार को छूता इस तरह पड़ा था कि लग रहा था कि भात उससे बिखरा था।

कल रात, औरत आदमी के बीच, बहुत छोटी बात घटी थी। इतनी छोटी की जैसे सरसों का दाना... इतनी छोटी जैसे चींटी का सर... इतनी छोटी...। वह नशे में रहा था। दिन भर, रोज की तरह। दिन भर, नशे की लहरें इकट्ठी करते रहो तो रात तक इतनी जमा हो जाती हैं कि पूरी देह हवा में तैरती रहती है। तो जब वह खाने बैठा तो उसकी देह हवा में तैरती रही थी बहुत ऊपर। उसकी औरत ने खाना परोसा भात के ऊँचे ढेर में, थोड़ी सी बथुआ भाजी, एक प्याज और दो हरी मिर्चों के साथ। खाना रोज की तरह ही था। भाजी बदलती थी, इस तरह की कभी-कभी नहीं रहती थी और बाकि सब ऐसा ही रहता था। पता नहीं क्या हुआ कि उसने खाना शुरू किया और भाजी खत्म हो गई और भात बचा रह गया। उसका गला ऐसा नहीं था कि सूखा भात गड़े, पर पता नहीं क्यों भात गले में गड़ा। नशे में डूबी देह, हवा में ज्यादा उपर थी शायद... शायद इसलिए यह हुआ। उसने औरत से थोड़ी भाजी और माँगी। बस, वह बड़बड़ाने लगी दिन भर पीना... कुछ काम नहीं मैं ही मरूँ-खपूँ... तू डगर डगर घूम! वह बोलती गई... बोलती गई। वह भीतर ही भीतर भरता गया... भरता गया। वह इतना भर गया कि उसने बेचैनी से तड़पते चारों ओर देखा। सबसे पहले थाली दिखी, उसमें आधे से ज्यादा बड़े ढेर में भात दिखा और अधखाया प्याज और अधखाई मिर्चे दिखीं। दीवार पर टँगा तूंबा दिखा। छत में बाँस की कड़ियाँ दिखीं, फूस के बीच से झाँकती। धुएँ में काला चूल्हा दिखा। चूल्हे की बुझती आग दिखी। औरत की पीठ दिखी जो उसकी बड़बड़ाहट पर हिल-डुल रही थी। सबसे अंत में टाँगी दिखी दीवार से टिकी रखी और उसका देखना ठहर गया...

औरत को जैसे आभास हो गया। वह मुड़ी तो उसे टाँगी दिखी आदमी के हाथ में, उसके कंधे से ऊपर उठी। औरत का हाथ, टाँगी के वार को रोकने के लिए अपने आप ऊपर उठा। चेहरा अवाक्! टाँगी खच् से उसकी मुड़ी हुई गर्दन में घुस गई। वह चीखी और चूल्हे की ओर लढ़क गई। सारे बर्तन बिखर गए।

आदमी ने खून देखा तो उसे अचंभा हुआ। खून उसे नशे की लहरों से नीचे उतार लाया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि थाली उसके पैरों से टकराई और भात बिखर गया चारों तरफ। खून बहुत तेजी से बह रहा था... औरत मर रही थी अवाक् उसकी ओर देखती।

अचानक आदमी को बिखरे बर्तन दिखे। औरत की दाहिनी बाँह के पास भाजी की गंजी थी। उसमें भाजी नहीं थी। उसे याद आया कि औरत की तबीयत ठीक नहीं थी। वह भाजी तोड़ने बाहर नहीं गई होगी। बची-खुची या पड़ोस से माँगी भाजी औरत ने उसे दी थी। वह रोने लगा... रोता रहा। वह रात भर अपनी औरत के पास सिर पर हाथ धरे बैठा रहा। सुबह हुई तो मरी हुई औरत की ओर देखने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। वह बाहर आया धुँधली सुबह में। उसने झोपड़ी का दरवाजा बंद नहीं किया। बस, उढ़का दिया। (पता नहीं क्यों उसे लग रहा था कि हो सकता है औरत सिर्फ बेहोश हो और होश में आए तो झोपड़ी में बंद न रह जाए।)

बाहर आकर वह कुछ देर तक क्या करे और कहाँ जाए पर खड़ा रहा। आसमान अँधेरा उतार रहा था और धरती नीली थी। वह दोनों को नहीं देख रहा था। अचानक वह चल पड़ा। वह हर सुबह झोपड़ी से बाहर होने के अपने रोज के समय में था। वह बिना कुछ सोचे पहाड़ी उतारता, टीले पर होता और नदी में नहाता। देह जो रोज करती है नियमित वह अपने आप घटता है। पर आज वह सलफी के पेड़ के पास ठिठक गया। सुबह की नीली रोशनी में पेड़ डूबा हुआ था - धीरे-धीरे काँपता सा। और उसने सलफी के तने पर अपना सिर टिका दिया। सिर पीटा और सलफी के पेड़ से कहा कि मेरी औरत मरी न हो... मरी हो तो सलफी के पेड़, उसे जीवित कर दो!

उसने पगडंडी पर पैर रखा। उसे लगा उसके पैर पगडंडी की धूल में गहरे गहरे धँस रहे हैं तो उसने पगडंडी से कहा कि वह मरी न हो... मरी हो तो पगडंडी, उसे जीवित कर दो!

वह पहाड़ी से उतरा तो उसे पहाड़ी दिखी। उसने पहाड़ी की ओर अपना चेहरा किया। पहाड़ी उसे विशाल ईश्वर की तरह दिख रही थी भव्य। वह पहाड़ी के सामने झुक गया और कई बार उसने माथा टेका और कहा कि हमेशा से खड़ी पहाड़ी, वह मरी न हो... मरी हो तो उसे जीवित कर दो!

वह नदी के पास गया कि नदी, तुम तो मुझे जानती हो कि मैं उसे नहीं मार सकता... वह मरी न हो... मरी हो तो नदी, तुम उसे जीवित कर दो!

उसने चिड़ियों से कहा... उसने उगते सूरज से कहा... उसने आसमान से कहा... उसने धरती से कहा... उसने हवा से कहा... कि वह मरी न हो, मरी हो तो उसे जीवित कर दो !

सबसे आखिर में वह टीले के पास गया और उसने टीले से कहा कि तुम मुझे सबसे अधिक जानते हो... मैं उसे मारना नहीं चाहता था... वह मरी न हो... मरी हो तो उसे जीवित करो!

उसने टीले से कहा और खड़ा रहा इंतजार करता... खड़ा रहा तब तक कि सूरज सिर पर न आ गया... फिर वह थककर टीले पर ही बैठ गया - रोज की तरह और अब तक बैठा हुआ है...

कल, जब पहाड़ी से लोग उतरेंगे तो टीले पर, एक छोटे टीले को बैठा देखेंगे...

.